ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 249-252
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

पाश्चात्य आधुनिक चित्रकला के स्वरूप एवं पाश्चात्य आधुनिक चित्रकला की सर्व प्रमुख प्रवृत्तियाँ

डॉ0 अमृत लाल

एसोसिएट प्रोफेसर– ललित कला विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ0प्र0) भारत

Received- 07.05.2019, Revised- 12.05.2019, Accepted - 17.05.2019 E-mail: -aaryvart2013@gmail.com

सारांश : ***पाश्चात्य आधुनिक कला का प्रारम्भ एक अन्य शैली से हुआ था जिसे अभाषात्मक चित्रकला या प्रभाववादी चित्रकला (इम्पेशिनस्टिक आर्ट) कहा जाता था। यह कला प्रवृत्ति (शैली) जो भी तमाम पाश्चात्य आधुनिक देशों तथा नगरों से प्रचलित है। यह शैली यथार्थवादी कला (रियलिज्म अथवा नेचुरालिज्म) के बाद प्रस्फुटित हुई थी। यर्थाथवादी चित्रकार का प्रयास यही होता था, कि वह वस्तु का वैसा ही चिति क्यू दे जैसी वह दिखाई पड़ती है। या जैसी वह सबको दिखायी देती है। लेकिन इम्पेश्नस्टिक (प्रभाववादी) कलाकारों ने वस्तुओं को" इस साधारण दृष्टि से न देखकर वैज्ञानिक दृष्टि से देखकर चित्रित करना आरम्भ किया। स्वाभाविक दृष्टि तथा वैज्ञानिक दृष्टि में बड़ा अंतर होता हैं। साधारण दृष्टि वाला चित्रकार वस्तु को वस्तु समझकर चित्रित करता है। पर वैज्ञानिक दृष्टिवाला चित्रकार वस्तु को वस्तु समझकर चित्रित नहीं करता। वह वस्तु के रूप, रंग, आकार, प्रकार को व्याख्यात्मक दृष्टि से देखता तथा चित्रित करता है। इस तहर से दो सर्व प्रमुख प्रवृत्तियाँ पाश्चात्य आधुनिक कला जगत में प्रचलित हुई एक आत्म–अभिव्यक्ति वादी और दुसरा आत्म–सृष्टिवादी।***

कुंजीभूत शब्द– आधुनिक कला, शैली, अभाषात्मक, चित्रकला, प्रभाववादी चित्रकला, इम्पेशिनस्टिक।

पाश्चात्य आधुनिक चित्रकला के स्वरूप, एवं पाश्चात्य आधुनिक चित्रकला की सर्वप्रमुख प्रवृत्तियाँ– आधुनिक चित्रकला की आज दो सर्वाधिक प्रचलित प्रवृत्तियाँ है आत्म अभिव्यक्ति और आत्म–सृष्टि। आत्म–अभिव्यक्तिवादी कला नये प्रतीको द्वारा नई अनुभूति की अभिव्यक्ति करती है। अनुभूति संवेगात्मक भी होती है। और बौद्धिक भी। आत्म–सृष्टिवादी कला प्रतीको और बिम्बों का सहारा नहीं लेती। वह सूक्ष्म आकारों के द्वारा एक नवीन संयोजन (कम्पोजीशन) मात्र उपस्थित करती है। यह संयोजन के विधि अंग भी, न तो किसी वस्तु के प्रतिरूप होते है, न किसी वस्तु अथवा भाव के प्रतीक। दादावादी कला (दादाइज्म) अथवा अतियर्थावादी (सरयालिज्म) इत्यादि आत्म–अभिव्यक्तिवादी कलाये है। सूक्ष्मकला या अरुपवादी कला (एब्सट्रैक्ट आर्ट) आत्म–सृष्टिवादी है। आधुनिक चित्रकला की सभी नयी शैलियों को इन्हीं दो वर्गों में बाटा जा सकता है और जब तक ऐसा न किया जाय आधुनिक कला की मूल प्रवृत्तियों को समझना कठिन है। जो लोग इस भेद को समझे बिना आधुनिक कला को समझना चाहते है वे अक्सर भ्रम में पड़ जाते है। प्रतीक या विम्बो के द्वारा आत्म–अभिव्यक्ति करना नई बात नहीं है। आदिकाल से मानव प्रतीको अथवा बिम्बों के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति करता चला आ रहा है। इसी आधार पर भाषा की उत्पत्ति हुई है और अन्य कलायें भी अभिव्यक्ति करने में सफल हुई है। नई बात केवल इतनी है, कि पहले कलाकार उन प्रतीको विम्बों का प्रयोग करता था, जो समाज में अति–प्रचलित होते थे या कम से कम आसानी से उसकी व्यंजना या ध्वनि प्राप्त की जा सकती थी। अर्थात् प्रतीक अधिकतर सार्वजनिक होते थे। आधुनिक कलाकार सार्वजनिक घिसे–पिटे प्रतीकों अथवा विम्बों को अपनी नई अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करने में असमर्थ पाते है। इसलिये वे नितान्त नये अथवा व्यक्तिवादी प्रतीको अथवा विम्बो के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करते है। यही कारण है कि ऐसे चित्रों की व्यंजना, भावना, लक्षण, अथवा ध्वनि प्राप्त करना हर व्यक्ति के लिये सरल नहीं अधिकतर लोग सार्वजनिक अथवा सर्व प्रचलित प्रतीकों की ही व्यंजना प्राप्त कर पाते है। चित्र में नितान्त नये प्रतीकों का जमघट उन्हें भ्रामक लगता है। क्योकि वे इसका प्रयत्न ही नहीं करते, कि नये प्रतीको अथवा विम्बों की व्यंजना समझे। वे ऐसी कला को ऊट पटांग कह कर या अस्वाभाविक कहकर छोड़ देते है।

आत्म–सृष्टिवादी कला में तो प्रतीक होते ही नहीं, जबकि अधिकतर लोग प्रतीकों के द्वारा चित्र का प्रभाव समझाने के आदी हो चुके होते है। यह प्रतीकों के द्वारा अर्थ समझने की प्रवृत्ति अति प्राचीनकाल से चली आ रही है। और एक पक्की आदत सी बन गई है, रूढ़ि बन गई है। यही सबसे बड़ी दिक्कत है, जिसके कारण अधिकतर लोग आत्म–सृष्टिवादी कला या सूक्ष्म अथवा अरूपवादी कला (ॲब्सट्रैक्ट आर्ट) का आनन्द नहीं ले पाते। आज संसार भर में आत्म–सृष्टिवादी कला ही सर्वाधिक प्रमुख है, यद्यपि आत्म–अभिव्यक्तिवादी कला उससे कही अधिक प्रचलित है, क्योकि वह प्रतीकवादी है, और सर्वाधिक लोग प्रतीकवादी प्रवृत्ति के आज भी है। जहाँ लोगों को नये प्रतीकों का अर्थ थोड़ा बहुत समझ में आने लगा, वहीं लोग आत्म–अभिव्यक्तिवादी कला की ओर झुकने लगे। आत्म–सृष्टिवादी कला तो अभी अनबूझ हो मानी जाती है और वास्तव में है भी, क्योंकि उसमें समझने के लिये कुछ भी नहीं

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

होता, न उसमें कोई अर्थ ही छिपा रहता है। उसमें तो केवल सूक्ष्म आकारों का संयोजन मात्र होता है या अनबूझ रेखाओं का जमघट।

आधुनिक कला का प्रारम्भ एक अन्य शैली से हुआ था, जिसे अभाषात्मक चित्रकला, या प्रभाववादी चित्रकला (इम्प्रेरिनस्टिक आर्ट) कहा जाता था। यह शैली जा भी तमाम पाश्चात्य आधुनिक देशों तथा नगरों में प्रचलित है। यह शैली यथार्थवादी कला (रिपलिज्म अथवा नेचुरलिज्म) के बाद प्रस्फुटित हुई थी। यथार्थवादी चित्रकार का प्रयास यही होता था, कि वह वस्तु का वैसा ही चित्रित क्यू दे जैसी वह दिखाई पड़ती है। या जैसी वह सबको दिखायी पड़ती है। लेकिन 'इम्प्रेरिनस्टिक' कलाकारों ने वस्तुओं को इस साधारण दृष्टि से न देखकर, वैज्ञानिक दृष्टि से देखकर चित्रित करना आरम्भ किया। स्वाभाविक दृष्टि तथा वैज्ञानिक दृष्टि में बड़ा अन्तर होता है। साधारण दृष्टिवाला चित्रकार वस्तु को समझकर चित्रित करता है, पर वैज्ञानिक .ष्टिवाला चित्रकार वस्तु को वस्तु समझकर चित्रित नहीं करता। वह वस्तु के रूप, रंग, आकार, प्रकार को व्याख्यात्मक .ष्टि से देखता तथा चित्रित करता है।

विज्ञान का प्रभाव कला पर भी पड़ा। विज्ञान ने प्रकाश तथा रंग के बारे में नये तथ्य सामने उपस्थित किये, इस बात पर नया प्रकाश डाला, कि वस्तुयें हमें क्यों दिखाई पड़ती है और कैसे दिखाई पड़ती है, जैसे वस्तुओं में रंग नहीं होता, रंग तो हमें प्रकाश के कारण दिवायी पड़ता है वस्तुओं के विभिन्न आकारों के कारण उनका रंग भी विभिन्न परिस्थितियों में बदल जाता है, एक ही चीज का रंग प्रत्येक क्षण बदलता रहताहै, क्योंकि सूर्य का कोण तथा प्रकश परिवर्तित होता रहता है। इत्यादि इसके आधार पर वस्तुओं के आकारों का नया विश्लेषण आरम्भ हुआ। इन नये तथ्यों को कलाकारों ने स्वीकारा, और इनके आधार पर कला में नये प्रयोग आरम्भ हुये। कला विश्लेषाणत्मक हो गई। इसी आधार पर घनवाद (क्यूविज्म), बिन्दुवाद (प्वाइन्टिलिज्म) इत्यादि नयी प्रवृत्तिया अथवा शैली निकली। इम्प्रेरिनस्ट चित्रकारों ने बजाय वस्तु के उसके आकार तथा रंग को ही प्रधानता देना शुरू किया, जबकि यथार्थवादी कलाकार वस्तु के वास्तविक प्रभाव से कभी भी मुक्त नहीं हो पाता था। वह 'आत्म' को ऐसा चित्रित करना चाहता था कि उसे देखकर आम स्वाने वाले की जबान से लार टपक जाय। 'इम्प्रेरिनस्ट' कलाकार इस प्रकार की भावना या सवेग अथवा कल्पना की अपने चित्र में जरा भी स्थान नहीं देता था। यह स्थिति बिल्कुल वैसी ही है जैसे एक डाक्टर भावना–मुक्त होकर नितांत बेदर्दी से लोगों के शरीर की चीड़ फाड़ करता है। यदि भावनावश जरा भी उसका हाथ पाँव काँप जाय, तो चाकू कुछ का कुछ काट फाड़ डाले। इम्प्रेरिनस्ट चित्रकार ऐसे ही डॉक्टर की भाँति वस्तुओं के रुप तथा आकार का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता था और उसी आधार पर उन्हें चित्रित करता था।

इस प्रकार आधुनिक चित्रकला में भावनात्मक रूप के बजाय आकारों तथा रंगों के आपसी संबंध और उसके प्रभाव को ही महत्व दिया जाने लगा। इसे समझने के लिये हीरा, मणिक, पन्ना, इत्यादि का उदाहरण दिया जा सकता है। हीरा एक कीमती पत्थर है, पर हीरा हवारीदने वालो के लिये यह उतना महत्व का नहीं, जितना हीरे का रंग, उसकी चमक, उसका आकार और उससे भी महत्व का है उसकी तराशा हीरा कीमती है यह किसी समृद्ध धनी आदमी के लिये इतना महत्व का नहीं, जितना यह कि उसका आकार, प्रकार, रंग, चमक या तराश कैसी है। इसी प्रकार 'इम्प्रेरिनस्ट' चित्रकार प्रत्येक वस्तु के आकार प्रकार रंग–संयोजन रंग चमक और उसकी बनावट (काम्पोजीशन) को महत्व देता था और यही उस को रूचिकर लगता था। वह वस्तुओं के व्याहारिक रूप को महत्व नहीं देता था। जबकि अभी तक चित्र देखने वाले वस्तु के व्यावहारिक स्वरूप को ही पसन्द करते थे या वस्तु के सवेगात्मक भावनाओं अथवा स्मृतियों को महत्व देते थे। किसी वस्तु का चित्रित रूप देखते ही उस वस्तु के बारे में उनकी सारी स्मृतियाँ तथा भावनायें जागृत हो उठती थीं। और केरल इसीलिये वे ऐसे चित्रों को पसन्द करते थे। वास्तव में इम्प्रेरिनस्ट चित्रकार ने इस चिरादिम प्रवृत्ति को सबसे पहले तोड़ा। और यही से चित्रकला एक विलकुल नयारास्ता अपनाती है। आधुनिक कला का चरम विकास इसी पर आधारित है। और इसी कारण लोग उसे समझने तथा उससे आनन्द लेने से वंचित रह जाते हैं, क्योकि जब भी वह आधुनिक चित्र देखते है, तो चित्रित आकारों तथा रंगों के द्वारा वे अनावश्यक रूप से उनके अन्दर अपनी स्मृतियों तथा भावना के रूप खोजने लग जाते है और चित्र से उलझ पड़ते है। जो चीज उसमें है ही नहीं, वही खोजने लग जाते है, और जिस चीज को महत्व दिया गया है, उसे देखते ही नहीं। पुरानी स्मृति, भावना या सम्बन्ध (असोशियेसन) योजना आधुनिक 'इम्प्रेरिनस्ट' अथवा 'ऐब्सट्रैक्ट आर्ट या आत्म सृष्टिवादी कला के आनन्द में नितान्त बाधक है।

मान लीजिये आप किसी मित्र से मिलने उसके घर गये और उसकी बैठक में बैठे उसके आने की प्रतीक्षा कर रहे है। तब तक अचानक आपकी .ष्टि ऊपर दीवार पर टंगे एक चित्र में कुछ रंगीन आकारों पर गई। उसके रंग इस ढंग से संयोजित है, कि उन्होंने आपका ध्यान आकर्षित कर लिया। आपने उसे ध्यान से देखा और तुरन्त अपने मन में कहा ओह, हो? यह तो पानी में तैरता एक जहाज है। फिर आपको लगा कि शायद यह तो उसी जहाज का चित्र है, जिसके द्वारा आप

ISSN NO.-2347-2944
Vol.-10, No.-I, Issues-11 YEAR- June -2019

विदेश से लौटे थे, और फिर आपको यह भी याद आया, किसी जहाज में आपकी प्रेयसी भी आपके साथ आ रही थी। फिर धीरे–धीरे जहाज के सम्बन्ध में तमाम पुरानी स्मृतियाँ तथा भावनायें, एक एक करके, उभरने लगी और चित्र आपको भूल गया। आप पुरानी स्मृतियों तथा भावनाओं में डूब गये। तब तब आपका मित्र आया और उसके कार की आवाज सुनाई पड़ी और आपका ध्यान भंग हुआ। मित्र से हाथ मिलाने के तुरन्त पश्चात आपने कहा, भई! यह चित्र तो गजब का है। बड़ा सुन्दर है कहाँ से मिला आपको? यह तो वही जहाज है जिससे मै विदेश से स्वदेश लौटा था।

इसका अर्थ यह हुआ कि चित्र में चित्रित 'रंगीन आकारो' को आपने वही जहाज समझ लिया, जिससे आप विदेश से लौटे थे और आपकी भावनायें तथा स्मृतियाँ वैसी ही हरी–भरी हो गई जैसा चित्र में चित्रित रसगुल्ले को देखकर किसी की जबान से लार टपकने लगे, जबकि चित्र में सफेद रंग तथा गोल आकार ही वहाँ चित्र में उपस्थित है, रसदार, खुशबूदार वास्तविक रसगुल्ला नहीं। अधिकतर लोग चित्र को इसी .ष्टि से देखते है। चित्र में रंगीन आकारों को देखकर उनकी पुरानी स्मृतियाँ तथा भावनायें जागृत हो जाती है, जबकि यहाँ यह रंगीन आकार केवल उस वस्तु के प्रतीक मात्र होते है।

आधुनिक चित्रकार इस दृष्टि से न तो चीजों को देखता है चित्र बनाते समय, न ही इस दृष्टि से वह चित्र बनाता है। वह तो जहाज को पानी में तैरता देखकर तुरन्त उसके आकर प्रकार रंग, बनावट इत्यादि का विश्लेषण करने लग जाता है, और इन्हीं के आपसी सम्बन्ध में उसे मजा भी आता है। वह अपनी स्मृतियाँ ताजी करता है, न भावनायें और इसी विश्लेषण के आधार पर वह कुछ आकार, रंग रेखायें, प्रकाश तथा छायाओं का एक लयात्मक संयोजन मात्र उपस्थित करता है। वह यही चाहता है, कि इसी .ष्टि से दर्शक उसके चित्र का आनन्द लें। पर हर साधारण दर्शक ऐसा नहीं कर पाता। वह स्मृतियों और भावनाओं के चक्कर में फस जाता है और जो आनन्द कला.ति में निहित है, उसे न पाकर अन्यत्र कहीं आनन्द खोजने की चेष्टा करता है (स्मृतियों तथा भावनाओं में) हमारी स्मृतियाँ तथा भावनायें प्रतीकों के द्वारा जागृत होती है, और सारी प्राचीन कलाओं में प्रतीकों की प्रमुखता रही है। आधुनिक कला की अभिव्यक्तिवादी शैली (एक्सप्रेरिनस्टिक आर्ट) प्रतीकवादी ही है, किन्तु सूक्ष्म आत्म–सृष्टिवादी कला अरूपवादी कला (औब्सट्रैक्ट आर्ट) प्रतीकवादी नहीं है। जबकि दर्शकों की दृष्टि अभी अधिकतर प्रतीकवादी है। यही मुख्य कारण है, जिससे हम सूक्ष्म आत्म–सृष्टिवादी कला का आनन्द नहीं ले पाते। आत्म–सृष्टिवादी कला प्रतीकों के द्वारा अभिव्यक्ति नहीं करती। यह प्रवृत्ति नितान्त आधुनिक है, और आदिकाल से लेकर अब तक की अन्य कला शैलियों से बिल्कुल भिन्न है या चाहे तो कहले विपरीत है। क्योकि इससे पहले की सारी कला प्रतीकवादी ही रही है। प्रतीकवादी कला वास्तव में समझने की चीज है। यदि प्रतीकों का अर्थ कोई न समझ पाये, तो चित्र का पूर्ण आनन्द उसे मिल ही नहीं सकता। यही कारण है कि सदियों से हमारी आदत सी बन गई है चित्रों की प्रतीकों के माध्यम से समझने की।

आत्म–सृष्टिवादी कला का ऐसा न तो कोई आग्रह है, न उसे देखकर समझने की कोई आवश्यकता है। वह समझने की चीज नहीं है। केवल देखने और आनन्द लेने की चीज है। समझने का मतलब ही यही है, कि चित्र को हम बौद्धिक रूप में ग्रहण करें, उसका तात्पर्य समझे। पर आत्म–सृष्टिवादी कला को इन्द्रिय–प्रधान कह सकते है। चित्र का वास्तविक आनन्द रंग, रेवा तथा आकारों के सूक्ष्म लयात्मक संगठन तथा आपसी सम्बन्ध में है, जिसके द्वारा हमारी सृष्टि एक विशेष प्रकार का ऐन्द्रिक बोध (सेसेशन) अथवा स्पन्दन प्राप्त करती है, जैसे जो सीधे आनन्द प्रदान करने में पूर्णतया समर्थ है। यह स्पन्दन एक प्रकार का स्वाद ही है, जैसे नाक के द्वारा स्तुशबू ग्रहण करना या कान के द्वारा स्वर–ताल ग्रहण करना। स्वर–ताल या खुशबू का कोई और अर्थ नहीं होता।

वे केवल कई प्रकार के हो सकते है। कभी मन को प्रसन्न करते है, कभी ढुवी या कभी कोई भी प्रभाव नहीं डालते। प्रभाव ग्रहण करना व्यक्तिगत है। व्यक्ति यदि सवेदनशील न हो या किसी क्षण वह स्वोया खोया सा हो, या उसकी चेतना और कही लगी हो, या वह चेतनाहीन हो गया हो, तो फिर ऐसी परिस्थितियों में वह इन बाध्य आकर्षणों से स्पन्दित नहीं होता। स्पन्दन हम तभी ग्रहण कर सकते है, जब हम एकाग्र चिन्त होकर प्रभाव को बिना किसी बाधा के मुक्त रूप से ग्रहण करें। ऐसा करने पर हम यह भी निश्चय करने में समर्थ हो सकते है, कि कौन से प्रभाव ने प्रसन्नता प्रदान की या किसने मन खराब कर दिया। बाद में अच्छे प्रभाव और बुरे प्रभावों को हम विभिन्न कोटियों में रखकर अच्छा या बुरा समझ सकते है और चाहें तो उनका अलग–अलग नामकरण भी कर सकते है जैसे नौ रस। सूक्ष्म आत्मसृष्टिवादी कला का आनन्द इसी रूप में लिया जाना चाहिये।

स्पन्दन हर प्रकार की कला, चित्रकला या अन्य प्रा. तिक वस्तुओं से भी प्राप्त होता है। यथार्थवादी कला अथवा प्रतीकवादी कला से भी स्पन्द प्राप्त होता है,

किन्तु वह शुद्ध नहीं होता क्योकि प्रतीक हमें सामने रवी वस्तु के बजाय उसकी व्यंजना की ओर केन्द्रित कर देते है। तब वह चित्र वास्तव में केवल एक माध्यम बन जाता है,

उस चीज के लिये, जो चित्र में है ही नहीं केवल व्यजित है। आत्म–सृष्टिवादी कला हमे चित्र से बाहर कहीं और नहीं ले आती, बल्कि अपनी ओर ही केन्द्रित करती है और उसी से साक्षातकार, हम सीधे आनन्द की प्राप्ति करते है। इसलिये यह आनन्द प्रतीकवादी कला से ज्यादा शुद्ध तथा प्रभावशाली होता है। जिसने कभी आम नहीं खाया है न देख्या है उसे हजार व्यंजना शक्ति के द्वारा भी आम का रसास्वादन नहीं कराया जा सकता, जब तक कि उसे आम रिवला न दिया जाय।

इसलिये व्यंजना के द्वारा वह आनन्द कभी नहीं प्राप्त हो सकता, जो वस्तु का साक्षात्कार करने से। सूक्ष्म आत्म–सृष्टिवादी कला अपने में ही सब कुछ है। उसका सीधे साक्षात्कार किया जाना चाहिये और बिना किसी अन्य माध्यम के उसका आनन्द लिया जाना चाहिये। इस सृष्टि से आत्मसृष्टिवादी सूक्ष्म कला ज्यादा वैज्ञानिक है। और ज्यादा समर्थ है आनन्द प्रदान करने में। भारतीय सौन्दर्य शासन में रस तत्व इसी स्पन्दन का ही पर्याय है।

१९४० के लगभग से कलकता में भी पश्चिम से प्रभावित नवीन प्रवृतियों का उद्‌भव हुआ। १९४३ में कलाकारों के "कलकता ग्रुप" का भी उदय हुआ। जिसमें गोपाल घोष, प्राण .ष्णपाल, सुनील माधव सेन, नीरद मजूमदार, रथीन मिश्रा, परितोष सेन, हेमन्त मिश्र तथा मूर्तिकार प्रदोषदास गुप्ता आदि ने भाग लिया। इस दल ने व्यक्तिवाद, कला के स्वातन्त्रय और अन्तर्राष्ट्रीयता का स्वर उठाया था। इनका कथन था..... "व्यक्ति सर्वोपरि है, उससे उपर कुछ भी नही है. .....कला अन्तराष्ट्रीय और स्वंय पर आश्रित होनी चाहिये।" जिस समय इस दल की स्थापना हुई उस समय बंगाल पर दुर्भिक्ष के काले बादल मंडरा रहे थे। और जन–मन में गहन निराशा का अधकार छाया हुआ था। श्रीमती कैसी के प्रयत्नो से १९४४ में जब इनकी प्रथम प्रदर्शनी हुई तो इनके बहुंत आलोचना हुई और लोगों ने इनके चित्रे की भोड़े तथा भद्दे कहा। किन्तु कुछ आलोचकों ने इनकी प्रशंसा भी की। अमेरिका और जर्मन कला–मर्मज्ञों ने इनकी पीठ थपथपाई। १९४८ से इन्हे सफलता मिलनी प्रारम्भ हुई। १९४७–४८ में ही बम्बई में एक "प्रगतिशील कलाकार दल" (प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स ग्रुप, पैग') का गठन हुआ था।

१९५० में कलकत्ता और बम्बई के दोनो दलों की एक मिली जुली प्रदर्शनी कलकता में हुई। तभा से 'कलकत्ता ग्रुप' विशेष प्रतिय हुआ। कुछ समय पश्चात् प्रदोषदास गुप्ता नेशनल आर्ट गैलरी के क्यूरेटर हो गये। रथीन मित्र दून स्कूल में अध्यापक हो गये और प्राण .ष्णपाल नई दिल्ली के वायुसेना स्कूल में कला–शिक्षक हो गये। शनैः शनैः यह दल विघटित हो गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक चित्रकला का इतिहास, लेखक–डा० शेस्वार चन्द्र जोशी से साभार।
2. 'समीक्षावाद' (एक कदम और आगे), लेखक–डा० गोपाल मधुकर चतुर्वेदी से आभार।
3. भारत की "समकालीन कला (एक परिप्रेक्ष्य), लेखक–प्राण नाथ मागो, से साभार।
4. कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ, लेखक–प्रो० रामचन्द्र शुक्ल से साभार।
5. आधुनिक चित्रकला, लेखक–डॉ० गिर्राज किशोर अग्रवाल से साभार।

*****